श्री शंकर शिक्षायतन

वैदिक शोध संस्थान

द्वारा समायोजित

वैदिकविज्ञान-व्याख्यानमाला

गीताविज्ञानभाष्य-बुद्धियोगविमर्श

प्रतिवेदन

श्रीशंकर शिक्षायतन(वैदिक शोध संस्थान), नई दिल्ली द्वारा दिनांक ३१ मार्च २०२२ को **वैदिकविज्ञान-व्याख्यानमाला** के अन्तर्गत **गीताविज्ञानभाष्य-बुद्धियोगविर्श** विषयक अन्तर्जालीय व्याख्यान का समायोजन किया गया। पं. मोतीलाल शास्त्री द्वारा प्रणीत गीताविज्ञानभाष्य के अन्तर्गत चार विद्याओं का वर्णन प्राप्त होता है। ये विद्याएँ हैं-राजर्षिविद्या, सिद्धविद्या, आर्षविद्या एवं राजविद्या। इनमें राजर्षि विद्या एक महत्त्वपूर्ण विषय के रूप में प्रतिपादित है। इस राजर्षिविद्या के अन्तर्गत सात उपनिषदों में निहित कुल ५० उपदेशों को समाहित किया गया है। इसी राजर्षिविद्या के द्वितीय उपनिषद् के अन्तर्गत विवेचित सात उपदेशों में श्रीमद्भगवद्गीता के द्वितीय अध्याय के श्लोक संख्या ३८ से ७२ तक के श्लोकों को आधार बनाकर बुद्धियोग का प्रतिपादन किया गया है। इन्हीं सात उपदेशों को आधार बनाकर शास्त्रीजी द्वारा प्रतिपादित **बुद्धियोग** पर यह व्याख्यान समायोजित था।

शास्त्री जी के अनुसार गीताशास्त्रोक्त योगमार्ग को हम **ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग** एवं **बुद्धियोग** इन चार भागों में विभक्त मान सकते हैं। इन चार योगों के कारण ही गीता-प्रतिपादिता आत्मविद्या क्रमशः **सिद्धविद्या**, **आर्षविद्या**, **राजविद्या** एवं **राजर्षिविद्या** इन चार भागों में विभक्त हुयी है। इन चारों योगों में आरम्भ के तीन योग तो क्रमशः ज्ञानयोग, कर्मयोग एवं भक्तियोग इन नामों से व्यवहृत हुए हैं। परन्तु चौथा बुद्धियोग बुद्धियोग एवं योग इन दोनों ही नामों से व्यवहृत हुआ है। शास्त्रीजी का कहना है कि इस प्रकार गीता में जहाँ-जहाँ योग शब्द प्रयुक्त हुआ है, वहाँ-वहाँ सर्वत्र भगवान् का अभिप्राय बुद्धियोग से ही है।

कार्यक्रम में मुख्य वक्ता के रूप उपस्थित प्रो. मनुलता शर्मा, पूर्व विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी ने राजर्षिविद्या के द्वितीय

उपनिषद् के अन्तर्गत विवेचित प्रथम तीन उपदेशों को आधार बनाकर सारगर्भित व्याख्यान दिया। उन्होंने बतलाया कि शास्त्रीजी ने राजर्षि विद्या के द्वितीय उपनिषद् के प्रथम उपदेश के अन्तर्गत गीता के द्वितीय अध्याय के श्लोक संख्या ३८-४० तक के तीन श्लोकों, द्वितीय उपदेश के अन्तर्गत श्लोक संख्या ४२-४६ तक के पाँच श्लोकों तथा तृतीय उपदेश के अन्तर्गत श्लोक संख्या ४७-५१ तक के पाँच श्लोकों को आधार बनाकर इन श्लोकों पर भाष्य करते हुए बुद्धियोग का विश्लेषण किया है।

प्रो. शर्मा ने बतलाया कि शास्त्रीजी प्रथम उपदेश का निष्कर्ष बतलाते हुए कहते हैं कि कर्मसन्यासलक्षण ज्ञानयोग की अपेक्षा फलासक्तित्यागलक्षण बुद्धियोग ही प्रशंसनीय मार्ग है। द्वितीय उपदेश का सार यही है कि फलकामासक्ति से वैदिक कर्म त्रिगुणभावमय बन जाते हैं। त्रिगुणभाव बुद्धियोग का विघातक है। अतः बुद्धियोगनिष्ठ योगी को फलकामासक्ति छोड़कर ही स्वाधिकार-सिद्धकर्म में प्रवृत्त रहना चाहिए। यही सच्चा वैदिक धर्म है। जबकि तृतीय उपदेश के माध्यम से हमें उपदिष्ट किया गया है कि हमें फल की आशा छोड़कर अपने अधिकारसिद्ध कर्म में ही यावज्जीवन प्रवृत्त रहना चाहिए। इस प्रकार योग में प्रतिष्ठित रहकर कर्म करने से न तो बन्धन होगा, न लोकसंग्रह बिगड़ेगा और न ही परिताप होगा।

कार्यक्रम में द्वितीय वक्ता के रूप में उपस्थित जामिआ मिल्लिआ इस्लामिआ विश्वविद्यालय, नई दिल्ली के संस्कृत विभाग के सहायकाचार्य डॉ. धनञ्जयमणि त्रिपाठी ने पं. मोतीलाल शास्त्री द्वारा राजर्षिविद्या के द्वितीय उपनिषद् के अन्तर्गत विवेचित सात उपदेशों में से अन्तिम चार उपदेशों पर वक्तव्य देते हुए कहा कि शास्त्रीजी ने चतुर्थ उपदेश में गीता के द्वितीय अध्याय के श्लोक संख्या ५२-५३ तक के दो श्लोकों पर, पंचम उपदेश में ५४-६१ तक के ०८ श्लोकों पर, छठे उपदेश में ६२-६३ तक के दो श्लोकों पर एवं सातवें उपदेश में श्लोक संख्या ६४-७२ तक के ०९ श्लोकों पर भाष्य करते हुए बुद्धियोग को स्पष्ट किया है।

उन्होंने बतलाया कि चतुर्थ उपदेश में शास्त्रीजी कहते हैं कि जब मन शोक और आनन्द दोनों ही अवस्थाओं में तथा स्वस्थ दशा में भी उपेक्षा करने लगता है तो उसका प्रज्ञा भाग स्थिर हो जाता है। मोह हट जाता है। बुद्धि निश्चला बनती हुयी अचला बनकर समाधि में प्रतिष्ठित होती हुयी बुद्धियोगनिष्ठा को प्राप्त कर निष्काम कर्म की अधिकारिणी बन जाती है। पंचम उपदेश में वैराग्यलक्षण बुद्धियोगसम्बन्धिनी स्थितप्रज्ञता के ६ स्वरूपों का प्रतिपादन किया गया है। छठे उपदेश में बुद्धियोग के विरोधी धर्मों-संग, काम, क्रोध, संमोह और स्मृतिभ्रंश का विवेचन किया गया है। सातवें उपदेश में यह बतलाया गया है कि रागद्वेषजनित वासना जब बुद्धियोग के प्रभाव से नष्ट हो जाती है तो उस समय वह योगी ब्राह्मी स्थिति में प्रतिष्ठित हो जाता है।

कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रहे प्रो. सन्तोष कुमार शुक्ल, समन्वयक, श्री शंकर शिक्षायतन तथा आचार्य, संस्कृत एवं प्राच्यविद्या अध्ययन संस्थान, जे.एन.यू., नई दिल्ली ने अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में कहा कि गीताविज्ञानभाष्य में पं. शास्त्री जी ने चार विद्याओं का अत्यन्त विस्तार से वर्णन किया है। ये विद्याएँ हैं- राजर्षिविद्या, सिद्धिविद्या, राजविद्या और आर्षविद्या। राजर्षिविद्या में वैराग्यबुद्धियोग, सिद्धिविद्या में ज्ञानबुद्धियोग, राजविद्या में ऐश्वर्यबुद्धियोग एवं आर्षविद्या में धर्मबुद्धियोग इन चार बुद्धियोगों का निरूपण हुआ है। राजर्षिविद्या का स्पष्ट संकेत गीता के चौथे अध्याय में मिलता है। वहाँ भगवान् इतिहास के क्रम से कहते हैं कि यह योग सर्वप्रथम मुझ से सूर्य को, सूर्य से वैवस्वत को, वैवस्वत से मनु को और मनु ने इक्ष्वाकु को प्रदान किया। इस प्रकार परम्परा से प्राप्त इस योग को राजर्षियों ने प्राप्त किया-

'इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥
एवं परम्परा प्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः ॥' (गीता ४.१-२)

प्रो. शुक्ल ने अपने उद्बोधन में राजर्षि विद्या के द्वितीय उपनिषद् के अन्तर्गत समाहित कुल सातों उपदेशों का सारतत्त्व प्रस्तुत करते हुए प्रतिभागियों को गीताविज्ञानभाष्य प्रतिपादित बुद्धियोग का सम्यक् निदर्शन कराया।

इस व्याख्यान कार्यक्रम का शुभारम्भ आचार्य गोपाल चन्द्र मिश्र वैदिक उन्नयन संस्थान, वाराणसी के वेदाचार्य श्री अनन्तेश्वर मिश्र के वैदिक मङ्गलाचरण से एवं समापन शान्तिपाठ से हुआ। कार्यक्रम का संचालन श्रीशंकर शिक्षातन वैदिक शोध संस्थान के वरिष्ठ शोध अध्येता डॉ. मणि शंकर द्विवेदी ने किया। गूगलमीट के माध्यम से समायोजित इस कार्यक्रम में देश के विविध विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों एवं अन्य शैक्षणिक संस्थानों के लगभग १५० प्रतिभागियों ने सहभागिता की। इस प्रकार अनेक प्राध्यापकों, शोधच्छात्रों एवं गीतानुरागियों ने इस कार्यक्रम में सम्मिलित होकर इसे सफल बनाया।